इकाई 8 अर्थप्रकृतियाँ तथा अन्य नाट्यतत्त्व

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 अर्थप्रकृतियाँ

- 8.2.1 बीज
- 8.2.3 पताका
- 8.2.4 प्रकरी
- 8.2.5 कार्य

8.3 कार्यावस्थाएँ

- 8.3.1 आरम्भ
- 8.3.2 यत्न
- 8.3.3 प्राप्त्याशा
- 8.3.4 नियताप्ति
- 8.3.5 फलागम

8.4 नाट्यसन्धियाँ

- 8.4.1 मुख
- 8.4.2 प्रतिमुख
- 8.4.3 गर्भ
- 8.4.4 विमर्श
- 8.4.5 उपसंहृति

8.5 अर्थोपक्षेपक

- 8.5.1 विष्कम्भक
- 8.5.2 प्रवेशक
- 8.5.3 चूलिका
- 8.5.4 अंकास्य
- 8.5.5 अंकावतार

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.9 बोध प्रश्न

8.0 उद्देश्य

नाट्य शास्त्रीय तत्वों के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप :

- नाट्यशास्त्रीय अर्थप्रकृतियां और उनके भेदों को समझा सकेंगें।

- नाट्यशास्त्रीय कार्यवस्थाओं को उनके भेदों सहित विस्तारपूर्वक बता सकेंगे।
- अर्थोपक्षेपक की परिभाषा तथा नाटक आदि में इनके प्रयोग का वर्णन कर सकेंगें।
- संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त इन तत्वों की उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगें।
- पॉच प्रकार की कार्यवस्थाएँ नाटकों में प्रयुक्त होती हैं, उनका उल्लेख कर सकेंगें।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज में वेद, पुराण आदि माध्यमों के अलावा सत् चरित्र, सत् मार्ग, सत् ज्ञान और शिष्ट आचरण व्यवहार पद्धति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति सहज, सरल, केवल दृश्य और श्रव्य के साथ लोकरंजन के माध्यम से ज्ञान कराने के लिए देवताओं के विशेष अनुरोध पर सृष्टि कर्ता ब्रह्मा के आदेश पर आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्रीय आदि ग्रन्थ नाट्यशास्त्र की रचना की। यह नाट्यशास्त्र 36 अध्यायों में विभक्त होकर नाट्य सम्बन्धी सकल तत्त्वों का सूक्ष्म एवं विस्तार पूर्व प्रयोग सहित वर्णन प्रस्तुत करता है। इस इकाई के अन्तर्गत हम नाट्यशास्त्रीय प्रमुख विषयात्मक बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त करेगें जिनके अन्तर्गत अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, नाट्यसन्धियों और अर्थोपक्षेपकों का परिगणन किया गया है। इन सभी नाट्यतत्त्वों की परिभाषाओं एवं उनके भेदों को भी हम यहाँ पर जानेंगे।

8.2 अर्थप्रकृतियाँ

नाटकादि साहित्य में जिस कथा का वर्णन किया जाता है उस इतिवृत्त की पांच अर्थप्रकृतियां होती हैं। इन अर्थप्रकृतियों का सीधा सीधा सम्बन्ध कथा वस्तु से माना जाता है। नायक के द्वारा जिस अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का उद्देश्य या प्रयोजन जिन कारणतत्त्वों के माध्यम से सिद्ध होता है उन्हें अर्थप्रकृतियां कहतें हैं। यथा – **प्रयोजनसिद्धिहेतवः**। अर्थात् प्रयोजन सिद्धि में सहायक साधन तत्त्व ही अर्थप्रकृतियां हैं यथा – **अर्थः फलं तस्य प्रकृतयः उपायाः फलहेतवः।** अर्थप्रकृति शब्द में अर्थ शब्द से अभिप्राय कथा वस्तु में स्थित प्राप्य साध्य फल है। ये नायक के इप्सित लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करती हैं। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इनकों ही अर्थप्रकृतियों के पांच भेदों के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा –

''बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः।।'' (दशरूपक. 1/18)

8.2.1 बीज

बीज नित्य सूक्ष्म अवस्था में होता है। जिस प्रकार वट वृक्ष का बीज सूक्ष्म होता है और जब उस बीज को अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होती है तब वही सूक्ष्म बीज अपने आकार में वृद्धि कर, बृहद स्वरूप को प्राप्त कर वट वृक्ष रूपी फल के रूप में दिखाई देता है। अर्थात् बीज का फल या प्रयोजन वृक्ष रूप को प्राप्त करना है। उसी प्रकार नाटकादि साहित्य के प्रारम्भ में बीज वाक्य का रोपण किया जाता है या स्थापित किया जाता है जो कि विविध प्रकार से उस इतिवृत्त के अन्तर्गत अपने स्वरूप में उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हुए नाटक के मुख्य प्रयोजनात्मक फल को प्राप्त कराकर समाप्त हो जाता है। यथा –

"स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलावसानं यं चैव बीजं तत् परिकीर्तितम्।।"

(नाट्यशास्त्र. 21/21)

उदाहरण के लिए महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित नाटक में नट के द्वारा बीजात्मक वाक्य कहा जाता है **"देव्यामपि हि वैदेह्यां** ..... से लेकर नट के द्वारा ही उक्त वाक्य **सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति"** यहां तक सीता का लोक में अपवाद की सूचना देना इसका बीज वाक्य है। नाटक के अन्त में लोकापवाद का निराकरण दिखाकर नाटक के सुखद अन्त का संकेत प्राप्त होता है। इसी प्रकार रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण के द्वारा इप्सित है कि उदयन का रत्नावली से मिलन कराना। यौगन्धरायण का बीजात्मक वाक्य प्राप्त होता है कि **यौगन्धरायणः – कः सन्देहः। द्वीपादन्यस्मात् इति पठति, इत्यादिना 'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ"** यहां तक बीज संकेत की प्राप्ति होती है।

8.2.2 बिन्दु

नाटकादि में महाकार्य बीज को उपस्थित करने के उपरान्त अवान्तर बीज अर्थात् बिन्दु के विषय में परिभाषा प्राप्त होती है। उपस्थित कथा के मध्य में अन्य कथाओं के आ जाने पर उन कथाओं से वह खण्डित न हो जाए इस हेतु से कथावस्तु को उसी इतिवृत्त से संयुक्त रखने तथा उसको निरन्तर आगे ले जाने में जो तत्त्व सहायक होता है उसे बिन्दु कहते है। यथा –

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।

(दशरूपक.1/17)

और भी –

प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेदकारणम्।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः।।

(नाट्यशास्त्र. 21/22)

उदाहरण के लिए देखना चाहिए कि उत्तररामचरित में राम के द्वारा जब शम्बूक वध किया जाता है तो एक प्रकरण समाप्त होता है और कथा विच्छिन्न होती है कथा को पुनः पूर्व कथा से संयुक्त करने के लिए मुरला के द्वारा कहे गये वाक्य **सखि तमसे..... से लेकर अनिर्भिन्नो..... रामस्य करुणो रसः।** राम के हृदय में उपस्थित करुण रस एवं उनकी दयनीय स्थिति ही नाटक का बिन्दु तत्त्व है।

8.2.3 पताका

जब रूपकादि में मुख्य कथा वस्तु के बीच में अन्य कोई दूसरी कथा आती है और उस कथा का प्रयोजन मुख्य कथा वस्तु पर उपकार करना या उसकी परिपुष्टता करना होता है तब इस प्रकार की कथा को पताका कहा गया है। यथा –

यद्वृत्तन्तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता।।

(नाट्यशास्त्र. 21/23)

उदाहरणार्थ रामायण में सुग्रीव की कथा पताका कथा है इस कथा का नायक सुग्रीव श्रीराम के कार्य में सहायता प्रदान करता है। इस प्रकार सुग्रीव की कथा मुख्य कथा वस्तु में उपकार का कार्य करती है।

8.2.4 प्रकरी

''प्रकर्षेण स्वार्थानपेक्षया करोति इति प्रकरी'' अर्थात् मुख्य कथा वस्तु की प्रयोजन सिद्धि के लिए जिसका कथा में प्रवेश कराया जाए तथा जिसमें अनुबन्ध विहीनत्व रहता है उस कथा विशेष को प्रकरी के नाम से जाना जाता है। उत्तररामचरितम् का शम्बूक वध को प्रकरी के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यथा –

फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम्।
अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत्।।

(नाट्यशास्त्र. 21/24)

8.2.5 कार्य

रूपकादि में वर्णित कथा वस्तु के नायक के द्वारा लक्ष्य या प्रयोजन की सिद्धि जिन विविध साधनों एवं माध्यमों से होती है उन माध्यमों का वर्णन कर नायक के सकल जीवन के विशिष्ट कथात्मक अंश का प्रस्तुतिकरण करना ही कार्य कहलाता है। यथा–

यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक्प्राज्ञैः प्रयुज्यते।
तदर्थे यस्समारम्भस्तत् कार्यं परिकीर्तितम्।।

(नाट्यशास्त्र. 21/25)

8.3 कार्यावस्थाएँ

रूपक आदि में जिस इतिवृत्त का वर्णन किया जाता है उस इतिवृत्त के नायक के द्वारा फल प्राप्ति के हेतु से जो प्रयत्न और कर्म का उद्योग किया जाता है जिससे प्रयोजन की सिद्धि होती है उन्हें कार्य अवस्थाएं कहते है। यथा – **संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः कारणस्य यः।** कार्य अवस्थाएं पांच प्रकार की होती है । प्रथम आरम्भ, द्वितीय प्रयत्न, तृतीय प्राप्त्याशा, चतुर्थ नियताप्ति और पंचम फलागम अवस्था होती है।

अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।।

(दशरूपक 1/19)

8.3.1 आरम्भ

जब नायक के निमित्त अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए जो इच्छा या उत्सुकता प्रकट की जाती है उसे ही आरम्भ कहते है। यथा –

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।

(दशरूपक 1/20)

जैसे रत्नावली नाटिका में मन्त्री यौगन्धरायण के द्वारा राजा की उन्नति एवं सम्मृद्धि के लिए उदयन और रत्नावली के मिलन के सम्बन्ध में उत्सुकता प्रकट करनी है आरम्भ का उदाहरण है।

8.3.2 यत्न

रूपक आदि में फल की प्राप्ति के निमित्त पूर्ण योजनात्मक पद्धति से प्रयास करना या उपाय करना ही प्रयत्न या यत्न कहा जाता है।

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।।

(दशरूपक 1/20)

उदाहरण स्वरूप रत्नावली नाटिका में सागरिका महाराज उदयन को प्राप्त करने की उनके दर्शन करने की इच्छा करती है और महाराज उदयन के दर्शन करने के लिए सागरिका ने महाराज का चित्र रेखांकित किया जिसको देखकर वह प्रसन्न होती है और चित्र को ही महाराज समक्ष कर उनसे वार्तालाप करती है। इस प्रकार चित्र निर्माण का यह उपाय ही यत्न कहा जाता है।

8.3.3 प्राप्त्याशा

तृतीय प्रकार की अवस्था का नाम प्राप्त्याशा है। नायक प्रयोजन सिद्धि हेतु कई तरह के उपाय करता है जिससे सफलता की संभावना बन जाती है। साथ ही कई प्रकार के विघ्नों के कारण असफलता की आशंका उत्पन्न हो जाती है। इस कारण फलप्राप्ति के में कोई स्पष्ट निर्णायक स्थिति नहीं बन पाती है। फल प्राप्ति होगी या नहीं होगी, यह सम्भावना फल की प्राप्ति हेतु किये जा रहे उपायों तथा विघ्नों के बीच झूलती रहती है, ऐसी अवस्था को प्राप्त्याशा कहते है।

उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।।

(दशरूपक 1/21)

उदाहरण के लिए रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में जब सागरिका तथा उदयन के समागम की स्थिति निर्मित होती है तब विदूषक के द्वारा यह शंका प्रकट की जाती है कि महारानी वासवदत्ता इस मिलन में बाधक न हो जाए यह शंका होना ही प्राप्त्याशा है।

8.3.4 नियताप्ति

इस चतुर्थ अवस्था का नाम नियताप्ति है। जब कार्य की सिद्धि में किसी भी प्रकार का विघ्न दिखाई न दे और न ही उसकी सिद्धि में कोई आशंका ही न हो तथा फल की प्राप्ति सुनिश्चित रूप से दिखाई दे तब ऐसी स्थिति को नियताप्ति कहा जाता है।

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।।

(दशरूपक 1/21)

रत्नावली नाटिका में महारानी वासवदत्ता की प्रसन्न होने से महाराज उदयन और सागरिका के मिलन की प्राप्ति का दिखाई देना ही नियताप्ति है।

8.3.5 फलागम

जब नाटक आदि में नायक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है तब इसे ही फलागम कहा जाता है। जैसे –

समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः।।

(दशरूपक 1/22)

रत्नावली नाटिका में उदयन को सागरिका की प्राप्ति तथा चक्रवर्ती सम्राट बनना ही फलागम कहा जा सकता है।

8.4 नाट्यसन्धियाँ

सभी नाटकादि में सन्धियों का प्रयोग किया जाता है। सन्धियां नाटक में वर्णित कथांशों को आपस में सम्बद्ध करने का काम करती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हमाने शरीर की सभी सन्धि स्थान सभी अंगों को आपस में संयुक्त करने का काम करते है। कथानक का मुख्य उद्देश्य किसी एक मुख्य प्रयोजन को सिद्ध करना होता हैं जसमें अनेक कथाओं का समावेश होता है उन सभी कथाओं का एक प्रयोजन की सिद्धि के लिए परस्पर जिससे सम्बन्ध स्थापित किया (गठ जोड़ किया जाए) जाए उसे सन्धि कहते हैं– **"अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति।।"** (दशरूपक 1/23)। सन्धि के पांच भेद प्राप्त होते हैं जिसके अन्तर्गत प्रथम मुख, द्वितीय प्रतिमुख, तृतीय गर्भ, चतुर्थ अवमर्श और पंचम भेद उपसंहृति है। ये पांचों सन्धियां नाटक में वर्णित विविध कथानकों के मध्यम में सम्बन्ध स्थापित करती है।

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।।

(दशरूपक 1/24)

8.4.1 मुख

सन्धियों में प्रथम सन्धि मुख सन्धि का परिगणन होता है। मुख सन्धि की परिभाषा प्राप्त होती है – रूपक आदि में वर्णित उस भाग को मुख सन्धि कहते है जो बीज के आरम्भ के लिए प्रयुक्त की गई हो तथा सभी भावों और रसों से अभिव्याप्त होकर प्रारभ्भ अवस्था से जिसका सम्बन्ध प्राप्त होता है।

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।
काव्यं शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम्।।

(नाट्यशास्त्र 21/37)

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।।

(दशरूपक 1/24)

मुख सन्धि के बारह भेद प्राप्त होते है जिनका प्रयोग नाटक आदि दस रूपकों में किया जाता है। उनके नाम इस प्रकार प्राप्त होते है – उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलाभन, उक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद, भेद, करण।

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।।
उपक्षेपः परिकरः परिन्यासो विलोभनम्।।
उक्तिः प्राप्तिः समाधानं विधानं परिभावना।
उद्भेदवेदकरणान्यन्वर्थान्यथ लक्षणम्।।

(दशरूपक 1/25,26)

8.4.2 प्रतिमुख

सन्धियों के द्वितीय भेद का नाम प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि में बिन्दु तथा प्रयत्न का समावेश रहता है । नाटक में बीज का प्रयोग किया जाता है कभी वह बीज प्रत्यक्ष हाता है और कभी वह अप्रत्यक्ष होता है जब वह बीज अपने का विकास कर लेता है और वह साक्षात् प्रकट हो जाता है तब उसको प्रतिमुख सन्धि कहते हैं।

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।

(दशरूपक 1/30)

बीजस्योद्घाटनं यत्तु दृष्टनष्टमिव क्वचित्।
मुखे न्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं भवेत्।।

(नाट्यशास्त्र. 21/38)

प्रतिमुख सन्धि के तेरह भेद प्राप्त होते है जिनका प्रयोग रूपक में किया जाता है वह भेद इस प्रकार है – विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास, वर्णसंहार।

8.4.3 गर्भ

नाटक में प्रयुक्त बीज के उपस्थित किये जाने के अनन्तर अग्रिम कथानकों के मध्य में जब बीज नष्ट हो जाता है और उसका उसमें बीज का बार बार अन्वेषण कर प्राप्त किया जाता है तब इसे गर्भ सन्धि कहते हैं।

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः।।

(दशरूपक 1/36)

गर्भ सन्धि के बारह भेद प्राप्त होते है – अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, संभ्रम, आक्षेप।

अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः।
संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले यथा।।
उद्वेगसंभ्रमाक्षेपाः लक्षणं च प्रणीयते।।

(दशरूपक 1/30, 31)

8.4.4 विमर्श

इस सन्धि के विषय में प्राप्त होता है कि रूपक में फल प्राप्ति के उद्योग के अन्तर्गत क्रोध, विलोभन, व्यसन, से विमर्श किया जाता हो तथा गर्भ सन्धि के माध्यम से बीज का प्रकटीकरण कर दिया जाता हो उसे विमर्श सन्धि कहते है।

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।

(दशरूपक 1/43)

गर्भ सन्धि के 13 अंग प्राप्त होते है जो इस प्रकार है – अपवाद, संफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन, और आदान।

तत्रापवादसंफैटौ विद्रवद्रवशक्त्यः।
द्युतिः प्रसङ्गश्छलनं व्यवसायो विरोधनम्।।
प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश।।

(दशरूपक 1/44,45)

8.4.5 उपसंहृति

नाट्यसन्धियों में अन्तिम पांचवीं सन्धि को उपसंहृति या निर्वहण सन्धि कहते है। नाटक में स्थित इतिवृत्त के बीज सहित सभी सन्धियों के संयुक्त एकत्व में समाहित होकर मुख्य प्रयोजन की जिसके माध्यम से सिद्धि होती है उसे उपसंहृति सन्धि कहते है।

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।

(दशरूपक 1/48)

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।

(दशरूपक 1/49)

इस सन्धि के 14 भेद होते हैं जो इस प्रकार हैं – सन्धि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाव, उपसंहार और प्रशस्ति।

संधिर्विबोधो ग्रथनं निर्णयः परिभाषणाम्।
प्रसादानन्दसमयाः कृतभाषोपगूहना।।
पूर्वभावोपसंहारौ प्रशस्तिश्च चतुर्दश।।

(दशरूपक 1/49, 50)

8.5 अर्थोपक्षेपक

रूपकादि के निमार्ण का उद्देश्य मंच पर प्रदर्शन करना होता है अतः शास्त्रीय दृष्टि से कुछ दृश्यों का मंच पर अभिनय नहीं किया जा सकता है जिनको केवल सूचना के माध्यम से बताया जाता है यह सूचना किसके द्वारा दी जानी चाहिए इसके लिए अर्थोपक्षेपक का निमार्ण किया गया । इस प्रकार कहा जा सकता है कि जो ऐसे प्रसंग हैं जो नीरस हैं या बीभत्स हैं या जिनको रंग मंच से प्रदर्शित करना शुभ नहीं है नैतिक लोक मर्यादा के कारण जिस दृश्य को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जिनकी सूचना देना ही अनिवार्य है ऐसे कथात्मक अंशों को सूच्य कहा जाता है। यथा –

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।

इस प्रकार जिनके माध्यम से सूचना प्रेषित की जाती है ऐसे तत्त्वों को अर्थोपक्षेपक कहते हैं। अर्थोपक्षेपक पाँच होते हैं – विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार और प्रवेशक।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।।

(दशरूपक 1/58)

8.5.1 विष्कम्भक

नाटक में प्रयुक्त कथानक के मध्य में ऐसी घटनाएं जो पूर्व में हो चुकी हैं, वर्तमान में हो रही हैं या भविष्य में होने वाली हैं उनकी मध्य पात्रों के द्वारा सूक्ष्म विधि से सूचना को दिया जाना ही विष्कम्भक कहलाता है। यथा –

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।

(दशरूपक 1/59)

वह विष्कम्भक भी अनेक प्रकार का होता है जिसके अन्तर्गत शुद्ध विष्कम्भक, सङ्कीर्ण विष्कम्भक, नीच विष्कम्भक और नीच विष्कम्भक।

एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः।।

(दशरूपक 1/60)

8.5.2 प्रवेशक

विष्कम्भक की ही भांति प्रवेशक होता है इसमें भी उन्हीं सूचनाओं को दिया जाता है जो विष्कम्भक में दी जाती है इसमें केवल इतना अंतर होता है कि वह सूचना नीच पात्रों के द्वारा दी जाती है इसमें दी गई सूचना जिस वाक्य या उक्ति के माध्यम से दी जाती है वह उदात्त नहीं होती है और प्रवेशक के द्वारा दी जाने वाली सूचना की योजना दो अंको के मध्य में रखी जाती है या उसका न्यास किया जाता है और इसमें संस्कृत आदि शिष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। यथा –

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।

(दशरूपक 1/60, 61)

8.5.3 चूलिका

जब भावी या संभावित घटनाओं की सूचना जवनिका (नेपथ्य स्थान मंच के पृष्ठ भाग में जो परदा लगा रहता है जहाँ साज सजावट के स्थान स्थित होते है) के अन्दर स्थित पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है तो वह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक होता है।

अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।

(दशरूपक 1/61)

8.5.4 अंकास्य

रूपकादि में जब किसी अंक का अंत हो रहा हो और उसी अंक में आये हुए पात्रों के माध्यम से उसी अंक में छूट जाने वाली विषय वस्तु की सूचना दी जाये तब उसको अंकास्य कहा जाता है। जैसे –

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।

(दशरूपक 1/62)

8.5.5 अंकावतार

अर्थोपक्षेपक का यह पांचवां अंग है इस अंग के अन्तर्गत प्रथम अंक में स्थित कथा वस्तु का अवच्छेद किये बिना उसी कथा वस्तु से सम्पृक्त दूसरे अंक की कथा वस्तु का वर्णन हो तब ऐसी स्थिति को अंकावतार कहते है।

अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।।
एभिः संसूचयेत् सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत्।।

(दशरूपक 1/62, 63)

8.6 सारांश

संस्कृत नाटकादि दस रूपकों में अनिवार्य रूप से अर्थप्रकृतियां, कार्यावस्थाएँ, नाट्य सन्धियां और अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया जाता है। अर्थप्रकृतियों के अन्तर्गत बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पांच का परिगणन होता है जिनका कथानक से सीधा सम्बन्ध होता है । इसी प्रकार पांच कार्यावस्थाओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है जिनमें आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम । इनका प्रयोग नायक के द्वारा फल प्राप्ति के साधन के अंतर्गत होता है। नाटकस्थ कथावस्तु के बीच में सम्बन्ध स्थापित रहे इसके लिए पांच सन्धियों का निमार्ण भी नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है वे नाट्यसन्धियां है – मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपबृंहण। नाटक में जिन दृश्यों की सूचना मात्र दी जानी चाहिए वह सूचना किसके माध्यम से, किस भाषा में और किस स्थान पर दी जानी चाहिए इसका ज्ञान हमें अर्थोपक्षेपक से प्राप्त होता है वे भी पांच ही कहे गये है विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अंकावतार । इस प्रकार हमने इस इकाई के अन्तर्गत अर्थप्रकृतियां, कार्यावस्थाएं, नाट्यसन्धियां और अर्थोपक्षेकों को जाना है।

8.7 शब्दावली

बीज – कथावस्तु का सूक्ष्म रूप
बिन्दु – संयुक्त करने वाला
पताका – उपकथा जो प्रधान कथा के साथ चले
प्रकरी – एक देश वाली कथा
कार्य – फलप्राप्ति में साधक
आरम्भ – कुछ चाहने की इच्छा का प्रकट होना
यत्न – प्रयत्न, प्रयास
प्राप्त्याशा – विध्न की आशंका से ग्रसित होकर फल की आशा करना
नियताप्ति – निश्चित फल की प्राप्ति दिखाई देना
फलागम – फल की प्राप्ति
मुख – भाव और रस सहित बीज की उत्पत्ति
प्रतिमुख – नष्ट हुए बीज का उद्घाटन
गर्भ – बीज का विकास

विमर्श – फल प्राप्ति के विषय में चिन्तन

उपसंहृति – सभी सन्धियों का एकत्रीकरण होकर फल प्राप्त कराना

विष्कम्भक – संस्कृत भाषा में मध्य कोटि के पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

प्रवेशक – संस्कृत इतर भाषा में नीच कोटि के पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

चूलिका – नेपथ्य से सूचना देने वाला

अंकास्य – अंक के अन्त में विद्यमान पात्रों द्वारा सूचना देने वाला

अंकावतार – प्रथम अंक के अंत में स्थित कथा वस्तु को छिन्न भिन्न करे बिना दूसरे अंक में प्रवेश कराने वाला

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, व्याख्याकार बाबू शुक्ल शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. 2065
2. नाट्यशास्त्र, भरतमुनिकृत, सम्पादक मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी।
3. दशरूपक, धनंजयकृत, हिन्दी टीकाकार डॉ. भोला शंकर व्यास, प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

8.9 बोध प्रश्न

1. अर्थप्रकृति किसे कहते हैं?
2. अर्थप्रकृति के कितने भेद होते हैं?
3. बीज किसे कहते हैं?
4. बिन्दु किसे कहते हैं?
5. पताका किसे कहते हैं?
6. प्रकरी किसे कहते हैं?
7. कार्य किसे कहते हैं?
8. कार्य अवस्था किसे कहते हैं?
9. कार्य अवस्थाओं के कितने भेद होते हैं?
10. आरम्भ किसे कहते हैं?
11. प्रयत्न किसे कहते हैं?
12. प्राप्त्याशा किसे कहते हैं?
13. नियताप्ति किसे कहते हैं?
14. फलागम किसे कहते हैं?
15. नाट्यसन्धि किसे कहते हैं?
16. नाट्यसन्धि के कितने भेद होते हैं?
17. मुख किसे कहते हैं?

18. प्रतिमुख किसे कहते हैं?
19. गर्भ किसे कहते हैं?
20. विमर्श किसे कहते हैं?
21. निवर्हण किसे कहते हैं?
22. अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं?
23. अर्थोपक्षेपक के कितने भेद होते हैं?
24. विष्कम्भक किसे कहते हैं?
25. प्रवेशक किसे कहते हैं?
26. चूलिका किसे कहते हैं?
27. अंकावतार किसे कहते हैं?
28. अंकास्य किसे कहते हैं?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY